



WWJMRD 2020; 6(11): 39-44
www.wwjmr.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

डॉ प्रत्युष प्रशांत

सेंटर फॉर वीमेंस स्टडीज,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, भारत

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को सार्वजनिक स्पेस में लाना जरूरी है

डॉ प्रत्युष प्रशांत

सारांश

कोविड महामारी के दौरान भारत ही नहीं पूरी दुनिया में महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा के आकड़ों में बढ़ोत्तरी, यह साबित करने के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज है कि पूरी दुनिया में महिलाओं की समस्या एक ही है। जिसे वह निजी और सार्वजनिक दायरे में झेलने के लिए विवश है। भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में लॉकडाउन के दौरान कामकाजी महिलाओं के साथ-साथ घरेलू महिलाओं के दैनिक काम में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ हिंसा के मामलों में बढ़ोत्तरी देखने को मिला। कई बार तो यह हिंसा शारीरिक के साथ-साथ मानसिक स्तर पर भी महिलाओं के शोषण और उत्पीड़न का कारण बना।

विश्व के अन्य देशों के अपेक्षा भारत में महिलाओं के साथ हिंसा के कारणों में कई स्तरों पर विविधता है इसकी व्याख्या एक रैखीय होकर नहीं की जा सकती है न ही इसका समाधान का एक मात्र फर्मूला ही विकसित किया जा सकता है। भारत में महिलाओं के साथ हिंसा के तमाम मामले निजी दायरे में ही नहीं कई परतों में सामाजिक विवशता के कारण भी कैद है। जरूरत इस बात की अधिक है कि महिलाओं के साथ हिंसा के तमाम मामलों को सार्वजनिक लोकवृत्त का हिस्सा बने। महिलाएं इसके लिए स्वयं को शर्मिदा महसूस करना बंद करें। जरूरत इस बात की भी अधिक है महिलाओं के साथ हिंसा के मामलों को दर्ज करने वाली सामाजिक संस्थाएं चाहे वह कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका हो या लोकतंत्र का चौथा खंभा मीडिया सभी संवेदनशील भी हो।

Keywords: हिंसा, घरेलू हिंसा, स्त्री-पुरुष, सामाजिकरण, सामाजिक

प्रस्तावना

वर्तमान समय में यदि हिंसा शब्द को परिभाषित करने का प्रयास करें, तो कह सकते हैं किमानव विकास के शर्तों पर सामाजिक व्यवस्थाओं को मापने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका यह हो सकता है कि वह अपने नागरिकों को इस योग्य बनाए कि हिंसा मुक्त जीवन जी सकें। परंतु, हिंसा व्यक्ति, समूहों या समुदायों की वह मनोवृत्ति है जो विभिन्न अवसरों पर विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग रूप में प्रकट होती है। हिंसा के प्रत्यक्षीकरण के अवसरों की विभिन्नता और उसके स्वरूप के संबंध में कोई एक राय नहीं होने के कारण इसे परिभाषा के दायरे में सीमित करना संभव नहीं हो पाता है। मसलन, सांप्रदायिक दंगों और आगजनी में जहां इसका कारण धार्मिक असहिष्णुता को माना जाता है तो परिवार और व्यक्तिगत स्तर पर हिंसा काफी हद तक सामाजिक हिंसा का प्रतिफल भी माना जाता है जबकि स्त्री विमर्श की सैद्धान्तिकी इसे “घरेलू हिंसा” कहा जाता है। इसी प्रकार कुछ वर्गों का परंपरागत शोषण को स्वीकार करने से इंकार भी हिंसा के कारण के रूप में उभरता है। इसके साथ-साथ जातीय और वर्गीय हिंसा भी समुदायों के विरुद्ध उभरते हैं। जाहिर है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हिंसा की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं मौजूद हैं इसलिए हिंसा को परिभाषित या उसकी पहचान करने के प्रयास में इसकी गंभीरता, संवेदनशीलता और घटना के सूक्ष्म तत्वों की पड़ताल करना असंभव हो जाता है। वैसे यह कहा जा सकता है कि हिंसा एक व्यक्ति, समूह, समुदाय या विचारधारा का दूसरे पर अधिकार बनाये रखने का माध्यम है जिसमें शक्ति का इस्तेमाल क्रूरतम तरीकों से होता है और हिंसा की प्रवृत्ति को अंकुशित-नियमित रखने के लिए धर्म, नैतिकता, सामाजिक संस्था-विन्यास और वर्चस्व आधारित मानसिकता आदि की भूमिका होती है।

महिलाओं के संदर्भ में अक्सर हिंसा की बात करते समय उनके उत्पीड़न की व्याख्या में हिंसा के एक पहलू पर केंद्रित हो जाते हैं जिसके कारण महिलाओं के साथ हिंसा के मामले सार्वजनिक बहस के दायरे में उस संदर्भ में स्थापित नहीं हो पाते हैं जिसकी वो मांग रखती है। वास्तव में महिलाओं के खिलाफ हिंसा का एक व्यापक सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक संदर्भ है जिसमें एक तरफ महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुख्य कारण आर्थिक विपन्नता और सामाजिक सुरक्षा है। तो दूसरी तरह सार्वजनिक जीवन और सामाजिक टकरावों में उसकी उपस्थिति सामाजिक-आर्थिक कारणों की वजह से विभिन्न जातियों, समुदायों एवं वर्गों के बीच जब भी संघर्ष होता है तो महिलाएं उनका निशाना बनती हैं, महिलाओं की

Correspondence:

डॉ प्रत्युष प्रशांत

सेंटर फॉर वीमेंस स्टडीज,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, भारत

“इज्जत” जातीय और वर्गीय समाज के लिए बदला लेने का उपकरण बन जाता है। इसके साथ-साथ सामाजिक टकरावों के दौरान महिलाओं के साथ हिंसा जातीय और सांप्रदायिक हिंसा के रूप में अपना विस्तार कर रही है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का स्वरूप सती-प्रथा, दहेज के कारण शोषण/उत्पीड़न, बलात्कार, कन्या शिशु हत्या/कन्या भ्रूण हत्या, गर्भनिरोधक या जनसंख्या नियंत्रण के साधन, महिला उत्पीड़न, घरेलू हिंसा और अन्य कई आयाम हैं; जिसकी अभिव्यक्ति समय-समय में होती है। हालांकि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के अन्य कई आयाम या स्वरूप हैं। मसलन, आंतर-किलिंग, महिलाओं के स्वास्थ्य के सवाल पर राज्यों की नीति, महिलाओं के सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक और संवैधानिक अधिकारों के संघर्ष और शोषण, आंतर-किलिंग या मीटू जैसे अभियान महिलाओं के साथ हिंसा के नए आयामों के पड़ताल की मांग करती है।

इस शोध आलेख में महिलाओं के संदर्भ में हिंसा के कारणों की पहचान उसका विस्तार और उसकी अभिव्यक्ति के उस मूल्य बोध को समझना है जिसे महिलाओं के संदर्भ में अभिव्यक्त होती रहती है। जो समय-समय पर समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों, संचार के माध्यमों में अभिव्यक्त होती है और विमर्श के रूप में स्थापित करने का प्रयास करती है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की पहचान

हिंसा मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है जिसकी अवधारणा का विकास सभ्यता की दिशा में मनुष्य के क्रामिक उन्नति से संभव होता रहा है। समाज, परिवार या व्यक्तिगत स्तर पर भी हिंसा न हो, यह सबसे आदर्श और अच्छीस्थिति हो सकती है। लेकिन वास्तविक स्थिति यह है लगभग सभी स्तरों पर सभ्यता के आरंभ से आज तक हिंसा मौजूद रही है। व्यक्तिगत स्तर के साथ अन्य स्तरों पर हिंसा संगठित रूप में मौजूद है। हिंसा मानवीय संदर्भ में सांस्कृतिक आधार पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्तर पर कुछ प्रश्न राज्य और समाज के पारंपरिक मूल्यों पर खड़ा करती है। राज्य सत्ता, पारंपरिक मूल्य (जो धार्मिक, जातीय और वर्गीय मूल्यों द्वारा संचालित होते हैं), पूंजी और पितृसत्ता आदि के अंतर्गुथन से मिलकर हिंसा के वर्णक्रम को उभारते हैं। राज्य सत्ता अपने आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व महिलाओं के सांस्कृतिक व्यक्तित्व पर गहरा सामंजस्य स्थापित कर उनका शोषण करते हैं। महिलाओं के साथ हिंसा की घटनाएं इस अंतर्गुथन का विस्तार (एक्सटेंशन) अतीत से वर्तमान तक सती-दहन, दहेज-हत्या, बलात्कार, कन्या शिशु-भ्रूण-हत्या, गर्भनिरोधक/जनसंख्या नियंत्रण नीति, यौन-शोषण, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा और हिंसा के अन्य रूपों में पाती है। इन परिस्थितियों में कई सवाल उभरते हैं और आपस में टकराते हैं। मसलन, महिलाओं विरुद्ध हिंसा की स्थिति राज्य, सत्ता, पूंजी और पितृसत्ता ऐतिहासिक तौर पर किस तरह एक दूसरे से जुड़े हैं? अगर नहीं, तो ये किस तरह पैदा हुईं और आधुनिक समय में यह किस तरह मौजूद हैं? ऐसे तमाम सवाल महिलाओं के साथ हिंसा की घटनाओं के बाद सतह पर तेजी से उभर कर आते हैं। महिलाओं का उत्पीड़न और हिंसा हर वर्ग विभाजित समाज की एक आम पहचान है। कविता कृष्णन हिंसा के बारे में लिखती है कि -

“असल में हिंसा औरतों पर पितृसत्तात्मक अनुशासन थोपने का एक तरीका है, जो औरतें इस अनुशासन का विरोध करती हैं उन्हें उनकी धृष्टता पर हिंसा के द्वारा दंडित किया जाता है।”

इसीतरह, मैत्रेयी कृष्णराज हिंसा के बारे में लिखती है कि -

“एक के ऊपर दूसरे के अधिकार को बनाये रखने की पीड़ादायक प्रक्रिया है जो शक्ति के बोध का अहसास कराने या साबित करने का क्रम है। व्यक्तियों में विद्यमान शक्ति द्वारा शक्तिहीनों के विरुद्ध हिंसा को जारी रखा जाता है या

अपनी शक्तिविहीनता को दूसरों के द्वारा अस्वीकार करने पर अनिवार्य रूप से हिंसा का प्रयोग करते हैं।”

महिला संगठनों ने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के अनुभवों को यौन हिंसा, महिला के ऊपर पितृसत्तात्मक सत्ता के अधिकार को बनाये रखने की अभिव्यक्ति के रूप में दर्ज किया। इसके साथ हिंसा शारीरिक हिंसा तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें आतंक के महौल का निर्माण, धमकी और प्रतिशोध भी शामिल है। व्यावहारिक स्तर पर महिलाओं के विरुद्ध उत्पीड़न और हिंसा आर्थिक, सांस्कृतिक और समाजीकरण के द्वारा प्रभावित और अनुशासित होते हैं। आर्थिक शोषण महिलाओं की गतिशीलता को सीमित करता है, उनको आश्रित बनाता है और महिलाओं के आंतरिक व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। समाज में महिलाओं की पहचान पत्नी, मां और घरेलू कामकाज संभालनेवाली भूमिकाओं से जुड़ी है, पुरुषों की पहचान उत्पादक कार्य, सार्वजनिक मौजूदगी और ताकत से जुड़ी है। परिवेश का यह बंटवारा कार्य और श्रम के विभाजन के रूप में अभिव्यक्त होता है। बदलती अर्थव्यवस्था में महिलाओं द्वारा कार्य और श्रम के क्षेत्र में किया जाने वाला कर्तव्यों के विस्तार को समाजिक मान्यता आर्थिक कारणों से मिला। परंतु, परंपरागत मानसिकता के कारण घरेलू और सार्वजनिक परिवेश में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को बल मिलता है इसमें कोई बदलाव आज भी देखने को नहीं मिला है।

इसके विपरीत सांस्कृतिक उत्पीड़न, महिलाओं में मनुष्य होने के बोध को पैदा नहीं होने देता। जब वह स्वयं को मनुष्य के रूप में स्वीकार ही नहीं करेगी तब अस्मिता, मुक्ति, समानता और न्याय जैसे मानवीय मूल्यबोधों की वह कल्पना नहीं कर सकती, क्योंकि उसे कल्पना करना ही नहीं आता है। पितृसत्ता अपने आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण को ज्यादा मुकम्मल रूप देने के लिए सांस्कृतिक परिवेश पर अपना नियंत्रण बनाने की कोशिश करती है। इतिहास बताता है कि किसी भी व्यक्ति या जाति को गुलाम बनाकर रखने के लिए उसके सांस्कृतिक जीवन का स्थायी तौर पर दमन कर दिया जाता था। इसके लिए जरूरी है कि स्त्री वर्ग को उभरने न दिया जाय। उसके मानस को इस प्रकार नियंत्रित किया जाये कि अपनी बात कहते हुए वह सत्ता के हित की रक्षा करने लगे। समकालीन समाज में कई महिलाएं सत्ता संस्कृति की पोषक हैं क्योंकि महिलाओं के जीवन में सांस्कृतिक प्रतिरोध के प्रति दुविधा के क्षण अधिक होते हैं। सत्ता अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए सांस्कृतिक उत्पीड़न को मजबूत करने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया को टूल के तरह इस्तेमाल करता है। समाजीकरण के द्वारा उत्पीड़न के बारे में प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवार की पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' में लिखती है-

"स्त्री-पुरुष प्रधान समाज की एक कृति है। वह अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों के ढांचे में ढालता चला आया है। स्त्री मानती है कि विश्व उन पुरुषों का है जिन्होंने इसे बनाया, इस पर आधिपत्य स्थापित किया और आज भी शासन करते हैं। स्त्री अपने को विश्व के निर्माण की जिम्मेदार नहीं समझती। वह पुरुष की आश्रित और उससे निम्न स्तर पर रहती है। उसने हिंसा और विद्रोह के पाठ नहीं पढ़े हैं। वह अपने शरीर तक ही सीमित रहती है और घर की सीमा में बंधी रहती है। वह पुरुष के मुखड़ों वाले देवताओं के सम्मुख हमेशा शान्त रहती है। ये हीनता देव उसके जीवन के लक्ष्य और मान्यताओं के निर्धारक होते हैं। ऐसे जीवन से छुटकारा पाने के रास्ते स्त्रियों को सुलभ नहीं होते। विवाह की बेड़ियाँ बड़ी मजबूत होती हैं और स्त्री को अपने को उस स्थिति के अनुकूल बनाना ही पड़ता है, वह इससे छुटकारा नहीं पा सकती। कुछ स्त्रियाँ अपना महत्त्व बताते हुए अत्याचारी या कर्कशा बन जाती हैं तो कुछ शान्ति और समझौते की स्थिति में रहती हैं।”

स्पष्ट है कि समाजीकरण की प्रक्रिया महिलाओं के विरुद्ध हिंसा सामाजिक,

सांस्कृतिक और आर्थिक पदानुक्रम(हायकी) वर्चस्व और प्राधिकार(डामिनेश) की तस्वीर सामने लाती है। यही समाजीकरण कई मामलों में महिलाओं को अपनी इच्छा और जरूरत का त्याग करने के लिए मजबूर करती है। खास तौर पर उन महिलाओं पर जो अपनी जरूरतों को पुरुष की जरूरतों में समाहित कर देने का दबाव होता है। महिलाओं को दबबू बनाने और घरेलू हिंसा के खिलाफ मौन रहने में इसकी बड़ी भूमिका होती है। भारत जैसे देश में जहां समुदायों पर लागू सामाजिक कायदे अलग-अलग तरह के हैं। महिलाओं के विरुद्ध व्यावहारिक स्तरों पर कायदों की व्याख्या नहीं की जाती है। परंतु, आम तौर पर इन्हें धार्मिक तर्कों के आधार पर न्यायोचित ठहराया जाता है। इन सामाजिक कायदों को कायम रखने में सत्ता का खेल साफतौर पर दिखाई देता है। इसके इतर महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के पीछे जैविक संरचना प्रधान कारण के रूप में सामने आती है। जैविक से होकर आगे बढ़ती हुई सामाजिक संरचना महिलाओं को मानसिक नियंत्रण के लिए विवश करती दिखती है। अधिकांश स्थितियों में महिलाएं प्राकृतिक रूप से नियंत्रित रहती हैं और कुछ में उसे जबरन नियंत्रित किया जाता है। विवाह संस्था, परिवार और अन्य सामाजिक संस्थाओं में सामाजिकता में महिलाओं के स्थिति और नियंत्रण का परिचायक होती है।

स्पष्टतः महिलाओं के खिलाफ हिंसा एक व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिणामों की परिणति है। बदलते समय में आर्थिक गतिशीलता के बाद राजनीतिक संदर्भ भी इसके साथ जुड़ता चला गया। जातीय और सांप्रदायिक हिंसा में राजनीतिक संदर्भ व्यापक रूप से मुखर होते हैं। मानवाधिकार के नजरिये से महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का पूरा जीवनक्रम को इस प्रकार समझा जा सकता है-जन्मपूर्व हिंसा – लिंग चुनाव के लिए हत्या, लिंग-जांच हो जाने पर गर्भावस्था के दौरान औरत पर अत्याचार क्योंकि वह बालिका शिशु को जन्म देने वाली है। शैशव हिंसा – बालिका शिशु के जन्म लेते ही उसकी हत्या। इसके साथ ही उसे जन्म देने वाली औरत को दिए जाने वाले शारीरिक, यौन और मानसिक उत्पीड़नाबालिका उत्पीड़न – बाल विवाह, महिलाओं का खतना, शारीरिक, यौन और मानसिक उत्पीड़न, दुराचारपूर्ण व्यवहार, बाल वेश्यावृत्ति और अश्लील सामग्री तैयार करने के लिए उनका इस्तेमाल। किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था में हिंसा-डेटिंग और सामंती हिंसा (एसिड फेंकना, डेंट के दौरान बलात्कार करना), गरीबी के कारण मजबूर करने यौनाचार करना, कार्यस्थल पर यौनशोषण, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, जबरदस्ती करवाई गई वेश्यावृत्ति, अश्लील सामग्री के लिए दुरुपयोग और हत्याएं, मानसिक उत्पीड़न, विकलांग महिलाओं का यौन शोषण, बलात् करवाया गया गर्भधारणावृद्ध महिलाओं के साथ हिंसा – आत्महत्या करने के लिए विवश कर देना या आर्थिक कारणों से की गई हत्या। यौन, शारीरिक और संवेदना के स्तर पर मानसिक उत्पीड़न। अर्थात् बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक महिलाएं हिंसा की शिकार होती हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उत्पीड़न के कई पहलुओं को सामने लाता है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारणों के साथ पितृसत्ता की जटिल संरचना भी हिंसा का कारण बनती है जिसका असर महिलाओं पर अलग-अलग तरीकों से होता है। इन तमाम कारणों के बाद महिला के विरुद्ध हिंसा का विस्तार सिर्फ दैहिक सीमा तक सीमित नहीं होता है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को महिला-पुरुष खांचे में देखने के साथ-साथ उसे उन नीतियों और राजनीति में देखने की जरूरत है जो वर्चस्ववादी मूल्यों और संस्कृति को विकसित करने में मदद करते हैं। समाज में वर्चस्वशाली समूहों द्वारा राज्य तथा राज्य की सामाजिक संस्थाओं द्वारा हिंसा का वैधानिक प्रयोग होता है। जो राजनीतिक (सांप्रदायिक, नस्ली, जातीय और वर्गीय) हिंसा के रूप में सामने आती है। इन सभी हिंसाओं का सबसे आसान शिकार महिलाएं

होती हैं। बृंदा काराट लिखती है कि -

“किसी भी समुदाय में महिलाएं दोयम दर्जे की स्थिति में होती हैं; एक गौण नागरिक होती हैं और समुदाय विशेष की मिल्कियत होती हैं। उन्हें ‘इज्जत’, ‘सतीत्व’ और ‘शुचिता’ के साथ जोड़ कर देखा जाता है। यदि किसी समुदाय का वर्चस्व कायम करना है तो इसी पर सबसे पहले हमला किया जाता है।”

वर्तमान समय में भारत में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा के विरुद्ध संघर्षों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह एक ओर उदारिकरण की ताकतों से टक्कर ले रहा है तो दूसरी तरफ सांप्रदायिकतासे साथ ही साथ महिलाएं आज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर भी समुदाय की सांस्कृतिक बाध्यताओं से मुक्त नहीं हैं। वह आधुनिक भी है और सांस्कृतिक परंपरा का निर्वाह करने के लिए विवश भी है इससे मुक्ति की कल्पना और इसको लेकर स्थापित बाजार और धर्म आधारित मिली-जुली मानसिकता उसको पेडुलम के स्थिति में रहने को विवश करता है। इसके अलावा इसमें यह भी आयाम भी जुड़ा हुआ है कि पिछली जातियों के महिलाओं के प्रति हिंसा उदारिकरण और सांप्रदायिकता का मिश्रित नीतियों का परिणाम है। आजादी के पहले और आजादी के बाद भारतीय समाज में विभिन्न वर्गों का आपसी सामंजस्य एवं संगठनात्मक स्वरूप को बिगाड़ने में विरोध के हिंसात्मक रवैये खास तौर पर जिम्मेदार रहे। ये हिंसात्मक व्यवहार महिलाओं के स्वतंत्रता और समानता के सवाल को कई तरह से प्रभावित करते रहे हैं। स्पष्टतः महिलाओं के विरुद्ध हिंसा ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में जहां वर्ग-संघर्ष का इतिहास है जिसके पीछे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारण रहे हैं। आज व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उसके नये कारण सामने प्रकट हो रहे हैं (हालांकि इनमें से कई पहले से मौजूद रहे हैं जिनका समय के साथ नवीनीकरण भी हुआ है)। इसका कुछ कारण अगर अन्याय का प्रतिकार है तो कुछ कारण वर्चस्व का संघर्ष भी है। परंतु, हिंसा जाति, नस्ल और सांप्रदायिकता के नये-नये रूपों में सामने आ रही है। कमोबेश हिंसा के हर मामलों में महिलाएं ज्यादा वेध होती हैं।

संचार माध्यम में दर्ज होती हिंसा

औपनिवेशिक भारत में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के बहसों की पड़ताल करें तो यह तथ्य उभर कर आते हैं कि औपनिवेशिक देशकाल में समाज-सुधारकों ने आत्मपरिभाषित करने की प्रक्रिया में तमाम सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। परंतु, इसमें ज्यादातर अभियानों में बुर्जुआ से संबंधित मुद्दों पर अधिक जोर दिया। मसलन, समाज-सुधारकों ने महिलाओं के संदर्भ में तमाम धार्मिक और जातीय कुरीतियों का पुरजोर विरोध करते हुए भी महिलाओं के अधिकारों और कर्तव्यों के प्रश्न पर धर्म और जाति व्यवस्था के प्रावधानों को उचित करार देते थे। इन समाज-सुधारकों का मानना था कि धार्मिक और जातिय नियम-कायदें सामाजिक व्यवस्था के लिए उचित हैं पर इससे मौजूद कुरतियां प्रगतिगामी हैं। यही कुरतियां धर्म और जाति व्यवस्था के प्रासंगिकता को चुनौतिपूर्ण बनाते हैं। इसलिए इस कुरतियों का उन्मूलन जरूरी समझा गया। परिणामतः समाज-सुधारकों ने स्त्री-पुरुष संबंध और इस मध्य मौजूद लैंगिक असमानता को मानवतावादी तार्किक विचारधारा के संदर्भ में देखा या समझा। जिसके कारण औपनिवेशिक भारत में समाज-सुधारकों के जेहन में महिलाओं के समस्याओं के संघर्ष में हिंसा या घरेलू हिंसा जैसा कोई शब्द दिखाई नहीं देता है। महात्मा गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन में प्रवेश करने के बाद हिंसा को नए तरीके से परिभाषित जरूर किया परंतु इसकी व्याख्या महिलाओं के परिवेश से हटकर थी। इसका बहुत महत्व महिला आंदोलन के समय हुआ और अन्याय और उत्पीड़न जैसे नये शब्द सामने आये। जबकि महिलाओं के हिंसा के कई प्रश्न निजी और सार्वजनिक दायरे में उपलब्ध थे। मसलन, सती के कारण महिलाओं का दहन, बाल विवाह व अनमेल विवाह, बहुविवाह,

पर्दा, व्यभिचार, दुर्व्यवहार, छेड़छाड़, बलात्कार, स्त्री क्रय-विक्रय, दासी, वेश्यावृत्ति आदि। परंतु, 'घर की शोभा', 'गृहलक्ष्मी', 'तुमसे ही घर कहलाया' जैसे विशेषणों में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा के प्रश्न अभिव्यक्त नहीं हो पा रहे थे या विमर्श के रूप में सतह पर स्थापित नहीं किए जा रहे थे। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामले को रेखांकित करते हुए चारु गुप्ता लिखती है कि -

“महिलाओं या लिंग, पर ध्यान रखकर महिलाओं के विरुद्ध पितृसत्ता के सांप्रदायिक बुनावट को बेहतर समझा जा सकता है। इस आधार पर हिंसा, महिलाओं की बड़ी पैमाने पर बरामदगी, साम्प्रदायिक उभार में उनकी भागीदारी या उनका उत्पीड़न को समझा जा सकता है। औपनिवेशिक भारत में महिला और साम्प्रदायिक राजनीति के चोली-दामन रिश्ते की समझदारी, सामूहिक हिंसा और दंगों की राजनीति का इस्तेमाल रोजमर्रा की जिन्दगी में हो रहा था।”

हिंसा का इस्तेमाल जातीय वर्चस्व बनाए रखने या एकाधिकार कायम करने में किया जाता था, तो महिलाओं को भौतिक तस्करी या सामाजिक हाशिये से दूर रखने का औजार मानते थे। जातीय विभेद की आक्रामक अभिव्यक्तियों और सीमित समावेशी सुधारों की परिभाषाओं में महिलाओं की स्थिति पेंडुलम की तरह थी। किसी भी समुदाय की एकमुखी पहचान होने के कारण पितृसत्ता के नवीनीकरण और महिलाओं को नियंत्रित करने के लिए हिंसा महत्वपूर्ण औजार के रूप में हर जातीय समाज में मौजूद थी।

जिन समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति में किसी-न-किसी किस्म के सुधार की वकालत करनी शुरू की थी, उन्होंने महिलाओं के विरुद्ध किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोध किया, इसकी जानकारी बहुत ही सीमित है। इस अवधि के तमाम समाज-सुधारकों के सामाजिक कुरतियों के विरोध की सीमा यह थी कि समाजिक कुरतियां और महिला प्रश्न भारतीय राष्ट्रवाद के राजनीतिक एजेंडे के बीच आ गये थे। जिसके कारण महिलाएं राष्ट्रीय आंदोलन में अवधारणात्मक फ्रेमवर्क में महिलाओं की स्थिति को बेहतर समझने के लिए स्वतंत्र कार्यक्रम या स्वतंत्र चिंतन नहीं था।

समाज-सुधारकों ने महिलाओं के विरुद्ध तमाम समस्याओं को सामाजिक समस्या के रूप में देखा और उसके समाधान के लिए संघर्ष भी किया। इस विभाजित मानसिकता के कारण महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मूल कारणों को नहीं पहचाना और न ही उसके विरुद्ध संघर्ष किया गया। जबकि महिलाएं घर और बाहर दोनों जगहों पर हिंसा की शिकार हो रही थी। इस देशकाल में भारतीय जनमानस की यह विशेषता रही कि वह घर के बाहर स्त्री पर होने वाले जुल्मों की निंदा करते थे किंतु स्वयं घर में स्त्री पर जुल्म की निंदा नहीं करते थे। घर के बाहर दिखाने के लिए स्त्री के प्रति अलग नजरिया और घर के अंदर अलग नजरिया। बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि -

“अपने देश के बर्ताव रीति बर्ताव में स्त्रियों पर अत्याचार की आप बाहर बड़ी निंदा करते हैं पर घर में जैसा बर्ताव आपका उनके साथ है उसे जौ मात्र भी नहीं बदलते। बाहर आप पर्दानशीनी के बड़े भारी दुश्मन हैं पर अपने घर की स्त्रियों के जरा भी काबू के बाहर निकलने दें यह कभी न होगा।”

बालकृष्ण भट्ट ने “स्त्री शिक्षा”, “स्त्री पहचान” और “स्त्री आंदोलन” के अंतरसंबंध को जोड़ कर देखा, और “महिला स्वतंत्रता” लेख में लिखा -

“सिर्फ शिक्षा से महिलाओं की पहचान और समस्या का समाधान संभव नहीं है। इसके लिए स्त्री संगठन एवं आंदोलन जरूरी है।”

सही मायने में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामले तब सामने आना शुरू हुए जब महिलाएं स्वयं सामने आईं और संगठित होकर इसके विरुद्ध संघर्ष करना शुरू किया। जब महिलाएं शिक्षा पाकर पत्रिकाओं की सम्पादिका और स्कूल-कालेजों में शिक्षिकाएं बनकर उभरीं। गृहलक्ष्मी, स्त्री दर्पण, प्रभा और चांद

जैसी कई पत्रिकाओं ने सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की बढ़ती मौजूदगी को उजागर किया। कुछ महिलाएं अपने जाति संगठनों के जरिये भी अपने हितों के बारे में ज्यादा जागरूक हो रही थीं और अपनी गतिविधियों का दायरा बढ़ा रही थीं। इससे परंपरागत लैंगिक विभाजनों और सीमाओं की संकीर्णता को कुछ हद तक चुनौति मिली और महिलाओं के हिंसा के कई विषय सामने आये जिसकी अनदेखी अबतक होती रही थी।

मसलन, चांद पत्रिका ने ‘संवेदना के अधिकार’ कालम में ऐसे लेख और पत्रों को छाप कर महिलाओं के निजी आवाज को अभिव्यक्ति करने की जगह दी। ‘संवेदना के अधिकार’ कालम ने महिलाओं की जिंदगी के अन्य पक्ष और आयाम को अभिव्यक्त किया और उनकी भावनात्मक जरूरतों का समर्थन दिया। संवेदना के अधिकार कालम में मथुरा जिले की एक औरत ने घर-परिवार के भीतर बहू की असुरक्षित स्थिति का सवाल उठाया था -

“जब से विवाह हुआ है, मुझे पर नाना प्रकार के अत्याचार होते हैं। इन अत्याचारों से घबरा कर मैंने आपकी शरण ली है। आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि मेरा पत्र “चांद” में छापकर मेरी सहायता करेंगे। विवाह के कुछ दिनों बाद जब मैं ससुराल आई तो एक दिन कुछ लोग मेरी सास से मिलने आये और कहने लगे कि अगर बहू को भी अपनी तरह बना ले तो वह पचास रूपये महीना कमा सकती है। मेरी समझ में नहीं आया कि ये क्या कह रहे हैं? इसके कई दिनों के बाद जब मैं कोठे पर सो रही थी, तो मेरे जेठ ने आकर मुझे दबा लिया। परंतु मैं उसे धक्का देकर कमरे से बाहर चली आई। इस पर मेरी सास मुझसे लड़ने लगी और बोली कि मेरे दोनों लड़के एक ही पेट से निकले हैं, दोनों को मैंने एक ही प्रकार का अन्य खिलाकर पाला-पोसा है। तुम दोनों को एक ही तरह समझना चाहिए। उसके आगे लिखा था कि उसके जेठ पर परिवार चलाने का जिम्मा था जबकि पति निकम्मा आदमी था और नाटकों और रास-मण्डल्यों में नाचता-फिरता था।”

इसी प्रकार का उल्लेख एक अन्य चिट्ठी में दिखता जिसे ‘संवेदना के अधिकार’ कालम प्रकाशित किया गया। लेख में जिक्र आता है कि -

“व्यापारी परिवार की एक अभागी गुजराती लड़की ने, जिसे 11 साल की उमर में एक अनपढ़ और गरीब लड़के से ब्याह दिया गया था, हिंदू परिवार में औरतों के अधिकारों के अभाव की व्यापक आलोचना करते हुए औरतों द्वारा खुद अपने आदर्शों को परिभाषित करने का सवाल उठाया। उसने अपने पति की आम गैर-जिम्मेदारी और मार पिटाई के बारे में लिखते हुए कहा कि जब उसका भाई उसे वापस लेने आया तो उसे गालियां देकर भगा दिया गया था। उसके आगे लिखा था कि पारिवारिक सम्पत्ति में उसका कोई हक नहीं था। हिंदू कानून और हिंदू समाज भी मेरी कोई सहायता नहीं कर सकता।”

ये कुछेक मिसालें हैं, जो इस बात की गवाही देती हैं कि चांद और अन्य पत्रिकाओं ने महिलाओं के घरेलू समस्या और घरेलू हिंसा को स्वर देने का प्रयास किया। हालांकि पत्र-पत्रिकाओं में महिलाओं के साथ सार्वजनिक हिंसा के विषय प्रकाशित होते थे (इसके अतिरिक्त हिंदा पत्रकारिता में कई सामग्री अभिव्यक्त होती दिखती है जो महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के व्यवहार को स्थापित करता था)। घरेलू हिंसा के साथ-साथ व्यभिचार, दुर्व्यवहार, छेड़छाड़, बलात्कार, स्त्री क्रय-विक्रय, वेश्यावृत्ति की समस्या पर भी चिट्ठी-पत्री और लेख पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। मसलन, डा. कल्याणसिंह शेखावत ने कन्यावध के प्रचलन की चर्चा करते हुए लिखा है कि- “राजपूत जाति में कन्यावध की प्रथा अधिकता से पाई जाती है और इसके संबंध में सामयिक पत्रों ने भी प्रकाश डाला गया है.....हमारे राजपूत भाई तो आए दिन नवजात बालिकाओं की हत्या करते रहते हैं, वह बड़ा भयानक दृश्य होता है, जब लड़की पैदा होते ही गला दबोचकर उसे मार दिया जाता है और लोगों से यह कह दिया जाता है कि गर्भपात हो गया है या मरा

हुआ बच्चा पैदा हुआ। समाज में ही ऐसे कारण उपस्थिति हैं कि एक राजपूत विवश होकर लड़कियों को पैदा होते ही मार डालना चाहते हैं।”

ठाकुर हरिसिंह शेखावत डाबड़ी के एक आलेख में कन्या-वध की स्थिति और अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है-

“कतिपय राजपूतों में विशेषतः शेखावतों को ही लीजिए जिनके घरों में पुत्री-वध सोउत्साह चल रहा है। अनेक राजपूत कुलकलंक मां बांछ अपनी निर्दोष कन्याओं को पैदा होते ही अथवा कालपर्यन्त भिन्य-भिन्य रूप से वध कर देते हैं। इस प्रकार की घटनाएं मध्यम कोटि के राजपूतों में ही पाया जाता है।”

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक काल में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की सामाजिक समस्याओं का स्वरूप विविधरूपात्मक रहा है। एक तरफ जहां कुछ प्रथाएं अपने अवसान के रूप में थीं तो कुछ प्रथाएं यथावत, पर मानसिकता के स्तर पर ये हिंसा कई रूपों में अपना विस्तार पाती रही थी। कन्या शिशु-हत्या की इस समस्या को देखते हुए 1870 में ब्रिटिश सरकार ने इसके लिए कठोर-कानून की व्यवस्था करके, इसपर नियंत्रण का प्रयास किया। कुछ स्थानीय राजा-महाराजाओं ने भी कठोर कानून की पैरवी की। इन प्रयासों से महिलाओं के संबंधित प्रथाओं में कुछ सुधारात्मक परिवर्तन हुआ, तो कुछ समस्या का स्वरूप बदल गया है जैसे कन्यावधा का स्थान भ्रूण हत्या ने ले लिया है, पर जन-मानसिकता में परिवर्तन नहीं हुआ। इसी तरह धार्मिक और जातीय वैसे नियम-कायदों या सामाजिक व्यवहार पर भी कठोर फैसले देखने को मिलते हैं, जो महिलाओं के विरुद्ध शोषण और हिंसा को उजागर करते हैं। मसलन, महाराजा मानहानी मामला में भी समाज सुधारकों ने धार्मिक नियम कायदों के सामाजिक व्यवहार का विरोध किया। परंतु, इन सामाजिक व्यवहारों के विरोध कर रही महिलाओं के आंदोलनों के विरुद्ध खड़े होने की जहमत नहीं उठाई, न ही इन पाखंडों के विरोध में महिलाओं के आत्म-अनुभवों को कोई जगह नहीं दिया। वास्तव में इन दौर के समाज-सुधारक धार्मिक पाखंड और कुरतियों के विरोधी थे परंतु वे धर्म के विरुद्ध नहीं थे। इस दौर के समाज सुधारकों कि चिंता स्त्री के विरुद्ध हिंसा या इस तरह के व्यवहारों के प्रति नहीं थी। इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामले को सरलीकरण के द्वारा शांत कर दिया जाता था। कभी-कभी इस समस्या को पूरमपूर कर्ता(सब्जेक्ट) के रूप में स्थापित कर दिया जाता था। देश में नारी मुक्ति आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन के समयांतर चलता रहा है। समय के साथ-साथ किसी भी आंदोलन की भांति इस आंदोलन का स्वरूप भी बदलता रहा है। एक युग में नारी मुक्ति का तात्पर्य यदि सती-प्रथा के नाम पर स्त्रियों को अग्नि में जिंदा जलाए जाने का विरोध करना था या विधवा विवाह या बाल विवाह था तो दूसरे युग में इसका अर्थ स्त्री-शिक्षा हो गया। आजादी के पहले स्त्री शिक्षा को स्त्री मुक्ति का मुख्य औजार माना गया तो आजादी के बाद आर्थिक व्यवस्था में उसकी भागीदारी को इसके समाधान के रूप में देखा गया और आज के समय में महिला सशक्तिकरण को महिलाओं के हर समस्या से मुक्ति का एकमात्र फार्मूला मान लिया गया है। जिसमें इस बात का कहीं कोई जिक्र नहीं होता है कि अपनी आर्थिक यथास्थिति को बनाये रखने के लिए भी महिलाएं शोषण एवं उत्पीड़न निजी और सार्वजनिक दायरे में झेलती हैं।

महिलाओं के प्रति समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति, सती-प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों के साथ-साथ उन पर किये जाने वाले दहेज, बलात्कार, कन्या हत्या, यौन-शोषण, विज्ञापनों में स्त्री शरीर का दुरुपयोग आदि जैसे शोषण भी पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगे। ऐसा नहीं था कि ये कुरतियां या हिंसात्मक व्यवहार समाज में औपनिवेशिक काल में नहीं थे, किंतु यह भी सत्य है कि हिंदी पत्रकारिता में उस प्रकार स्थान नहीं पाते थे जैसे अन्य अन्यायों या

कुरतियों के विरोध में लिखा जाता था। हिंदी पत्रकारिता ने और समाज सुधारकों ने लिंग के आधार पर स्त्री-पुरुष के बीच के असमानता को साफ रूप में परिभाषित नहीं किया था। इसके साथ-साथ भारतीय समाज में चली आ रही परंपरा, रीति-नीति, आर्दश और मान्यताएं अनेक जातियां उपजातियों पर अधिक हावी थीं। इसे जाति व्यवस्था के साथ-साथ धर्म विशेष का भी समर्थन प्राप्त था। धर्म और जाति की धारणा रूढ़िवादी रूप के साथ राष्ट्रवादी धर्म के रूप में उभर कर सामने आईं। जिसने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के तमाम बहसों को विमर्शों के केंद्र में स्थापित नहीं होने दिया। उन्होंने पहले स्त्री-शिक्षा को ही महिलाओं को सामाजिक जड़ता से निकलने का विकल्प माना और बाद में आर्थिक आत्मनिर्भरता जो आज महिला सशक्तिकरण के रूप में परिभाषित की जाती है को स्त्री मुक्ति का कारगर हथियार के रूप में देखा। परंतु, महिलाओं को अपने विरुद्ध हिंसा से मुक्ति न ही शिक्षित होकर मिला न ही आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर।

स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयासों के अंतिम वर्षों में महिलाओं के साथ हिंसा तमाम प्रश्न राष्ट्रीय आंदोलन में समाहित हो गए क्योंकि स्त्री मुक्ति को भी भारतीय स्वाधीनता से जोड़कर देखा जाने लगा। परिणामतः आंदोलन में सक्रिय स्त्रियां घर लौट गईं या समाज सुधार की ओर उन्मुख हुईं। स्वतंत्रता के पश्चात संविधान में स्त्रियों को समान अधिकार और बहुआयामी मिश्रित संस्कृति में लिंग-संबंधों के आधार पर पितृसत्ता की सही पहचान स्पष्ट नहीं होने कारण कुछ दशकों तक नारीवादी आंदोलनों में बिखराव ला दिया या नारीवादी आंदोलन स्थिर रहा। आजादी के कुछ दशकों के बाद नारीवाद चाहे किसी भी विचारधारा या राजनीतिक दल से जुड़ी हो महिलाओं के विरुद्ध होनेवाले शोषण और अत्याचारों के प्रकारों पर ध्यान केंद्रित कर यौनाचार या महिलाओं के उत्पीड़न को पहचाना; इसके लिए संघर्ष भी किया। वसंती रमण बताती है कि—“आजादी के बाद सातवें और आठवें दशक में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आंदोलनों की गति और नई आर्थिक नीतियों ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा और उत्पीड़न की घटनाओं में मात्रात्मक एवं गुणात्मक तौर पर इजाफा किया। इसको महिला संगठनों ने पहचाना और महिलाओं के साथ होने वाले हिंसा के विरुद्ध संघर्ष किया।”

जिसके परिणाम स्वरूप समकालीन नारीवाद आंदोलन ने दो असरदार आंदोलन शुरू किये। पहला आंदोलन दहेज मृत्यु के विरोध में चलाया गया तथा दूसरा आंदोलन बलात्कार के विरुद्ध चलाया गया। इन आंदोलनों ने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कारणों को उभारा ही नहीं महिलाओं के विरुद्ध हिंसा तरीकों को नये सिरे से पुनर्परिभाषित ही नहीं किया हिंसा के सिद्धांत की व्याख्या करना प्रारंभ किया। जिसके कारण महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एक व्यापक बहस का विषय का हिस्सा बना और इसके समाधान की संभावना की तलाश शुरू हुई। इन बहसों, सेमिनारों और हिंसा के कारणों के अभिव्यक्तियों ने सरकार को महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामलों को नियंत्रित करने के लिए कई कानून बनाने को विवश किया। आज हमारे पास किसी भी महिला को सामाजिक सुरक्षा देने के लिए कई कानून हैं पर महिला के विरुद्ध किसी भी हिंसा को जड़-मूल से समाप्त करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक जागरूकता और चेतना की जरूरत संवेदनशीलता के साथ अधिक है। अफसोस यह है कि इसका विस्तार सामाजिक दायरे में बहुत ही सीमित स्तर तक ही है।

आज हमारे पास “मीटू” जैसे शब्द या महिला उत्पीड़न के विरोध में न्याय पाने का जैसा भी अधिकार है वह इन आंदोलनों के कारण ही है। “मीटू” जैसे शब्द इस परिवर्तन का मौलिक मापक है कि आज महिलाएं निजी ही नहीं सार्वजनिक स्पेस में भी अपने साथ हुए किसी भी हिंसा के विरुद्ध संघर्ष कर सकती हैं। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि आज भी समाज में कुछ सच्चाई इस तरह की है कि वह महिलाओं के हक में तमाम बदलाव के बाद भी उसको गिरफ्तार करती है। कोविड महामारी के दौरान पूरी दुनिया में

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामले में हुई बढ़ोत्तरी ने यह सिद्ध कर दिया है पूरी दुनिया में महिलाओं के मुक्ति के सवाल एक ही दीवार से जाकर टकराते हैं और वह है पुरुषवादी पितृसत्ता की दीवार, जिसे तोड़ने के लिए महिलाओं को सबसे पहले अपने विरुद्ध हिंसा के अनुभूतियों को निजी दायरे से निकालकर सार्वजनिक दायरे में लाना होगा। साथ ही साथ महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा की बातों को निजी दायरे से मुक्त करने के बाद उसके खिलाफ सामूहिक संघर्ष करना होगा। यह सामूहिक संघर्ष सामाजिक, न्यायिक और सांस्कृतिक दायरे में लड़ना होगा।

निष्कर्ष –भारत में महिलाओं के प्रेम, बलिदान तथा विनम्रता को प्रतीक के रूप में हमेशा से सराहा गया। इसके बावजूद विडम्बना यह रही है कि समाज की संस्थाओं में महिलाओं को सम्मानजनक स्थान नहीं मिला, उसके आत्मसम्मान को हिंसा के माध्यम से हमेशा रौंदा गया। आजादी के पहले और आजादी के बाद से आज तक योजनाबद्ध विकास के दशक और महिला सशक्तिकरण के नारों के बाद भी मौजूदा “मीटू” जैसे अभियान ही नहीं, कोविड महामारी के दौरान महिलाओं के सुरक्षा के लिए सरकारों के हेल्प लाइन नम्बर उपलब्ध कराने की बाध्यता। यह बताने के लिए काफी है कि सामाजिक व्यवस्था में उन्हें यथोचित स्थान नहीं मिला। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामलों के अध्ययन यही बताते हैं कि इन घटनाओं के मूल कारण सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारण हैं आधुनिक समय में जीवन की बढ़ती जटिलताओं, कुठों और बढ़ते हुए उपभोक्तावाद ने इसे और अधिक जटिल बना दिया है।

हिंसा की शिकार महिलाओं के लिए सहायक संरचनाओं में सुधार तथा विस्तार, नीति निर्माताओं, न्यायापालिका और अन्य सामाजिक संस्थाओं को संवेदनशील होकर और समाज में पुरुषों के मौलिक सोच में बदलाव किए बिना हम इस समस्या के समाधान के दिशा में आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

संदर्भ-

1. <https://satyagrah.scroll.in/article/135647/corona-virus-lockdown-bharat-asar-mahilayen-hinsa-badhotari>
2. कविता कृष्णन, “बलात्कार संस्कृति के विरुद्ध” पेज न० 1, www.debatonline.inसे 24 फरवरी 2013|
3. मैत्रीय कृष्णराज और गोविंद केलकर ‘वूमेन एंड वायलंस ए सेमिनार रिपोर्ट, इकोनामिक एंड पालिटिकल वीकली, नं.12, 23 मार्च 1985
4. Simone de Beauvoir, The Secound Sex, का हिंदी रूपांतरप्रभा खेतान “स्त्री उपेक्षिता”, हिन्द पाकेट बुक्स,नई दिल्ली 2004 पेज न० 25
5. बृन्दा कारात, ‘भारतीय नारी: संघर्ष और मुक्ति’, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली,2008 पेज न०-194
6. चारू गुप्ता, स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2012, पेज न० 17
7. बालकृष्ण भट्ट 19वीं शताब्दी में बौद्धिकों के उस वृहत्तर नजरिये को व्यक्त कर रहे थे जो नवजागरण की धुरी था। बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी के सफल पत्रकार, नाटककार और निबंधकार थे। हिंदी-प्रदीप नामक मासिक पत्रिका निकाला। इस पत्र के वे स्वयं संपादक भी थे।
8. सत्यप्रकाश मिश्र,(सं) बाल कृष्णभट्ट प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1996 पेज न० 25
9. सत्यप्रकाश मिश्र,(सं) बाल कृष्णभट्ट प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट,दिल्ली, 1996 पेज न० 24
10. Francesca Orsini , The Hindi Public Sphere 1920-1940: Language and Literature in the Age of Nationalism, Delhi, 2002pp 99

11. चारू गुप्ता, स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2012, पेज न० 29
12. चिट्ठी-पत्री, चांद, 12,भाग 2,1मई 1934, पेज न०- 99-100
13. चिट्ठी-पत्री, चांद, 15,भाग2,1मई, 1927, पेज न०-86-71
14. क्षात्रधर्म मासिक,(समाचार पत्र), वर्ष 1, अंक 8, मई 1938 पेज न०-37-38,NMML,माइक्रोफिल्म
15. कन्यावध’ आलेख द्वारा धीर सिंह शेखावत, क्षात्रधर्म मासिक वर्ष 1, अंक 9, जून 1938 पेज न०- 44-46 ,NMML,माइक्रोफिल्म
16. Maharaj Libel Cases - 1862 (bombayhighcourt.nic.in)
17. वसंती रमण, सार्वजनिक जीवन की हिंसा को भी बहस के दायरे में लाइये, सं. सुमन कृष्णकांत, इक्कीसवीं सदी की ओर,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2001 पेज न०-159